

जनाकांक्षा का विकल्प नहीं है सोशल मीडिया

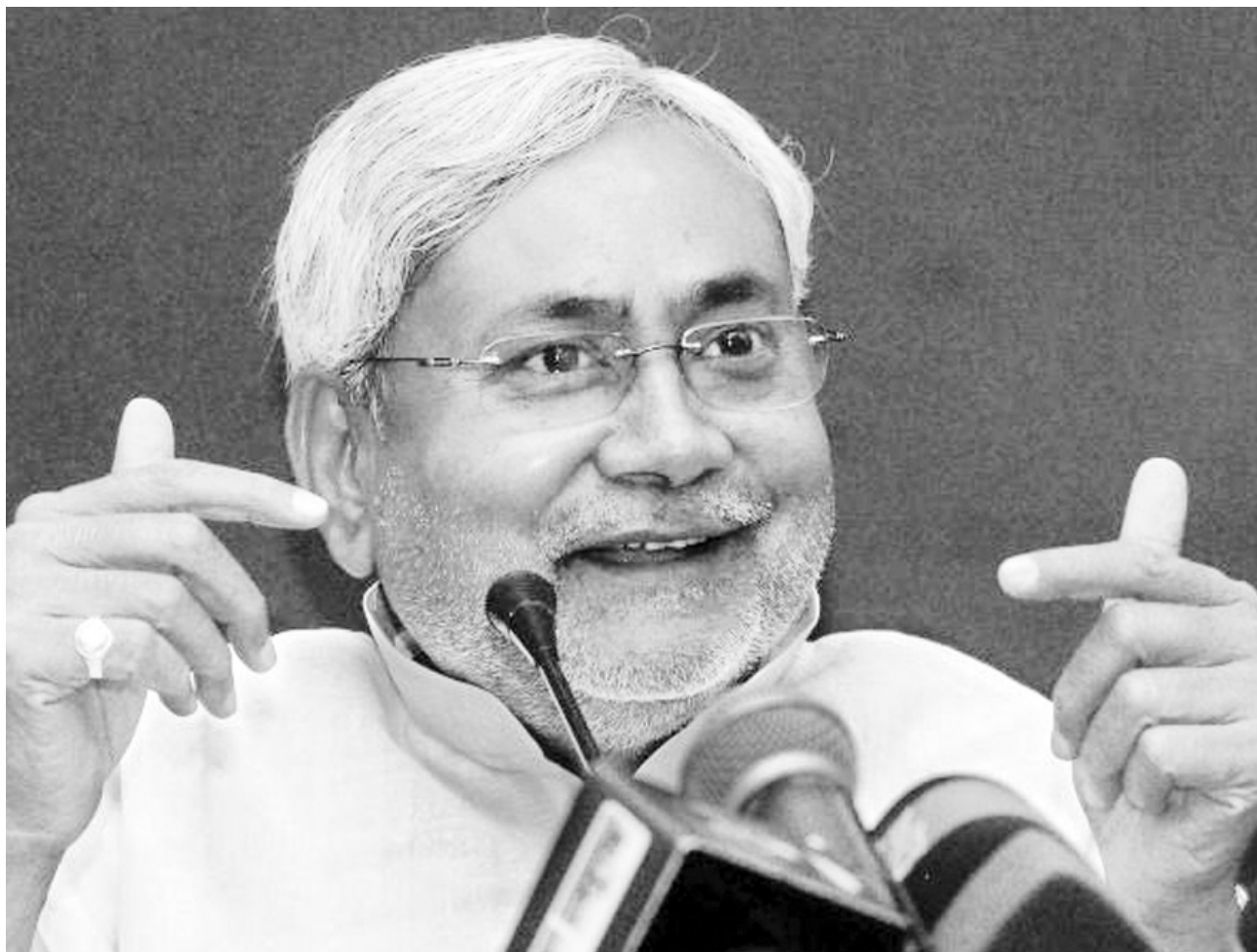
■ रहीस सिंह

पिछले दिनों सोशल मीडिया को लेकर कुछ ऐसी अध्ययन रिपोर्ट्स पर नजर पड़ी जो एक दूसरे के विपरीत निष्कर्ष दे रही थीं, इसलिए यह सवाल उठा कि क्या भारत में सोशल मीडिया राजनीतिक गतिविधियों पर स्थायी प्रभाव छोड़ने में सक्षम होगा? एक सवाल यह भी उठा कि क्या भारत में सोशल मीडिया अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों के मुकाबले कहीं ज्यादा प्रभावशाली हो चुका है या फिर विकारग्रस्त है, जिससे खास सार्थक उम्मीद नहीं की जानी चाहिए? लेकिन इसके बावजूद सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर

लगभग सभी राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच एक ऐसी प्रतिस्पर्धा दिख रही है, मानो उनकी राजनीतिक योग्यता का असल मूल्यांकन यहीं होने जा रहा है। एक प्रश्न यह भी है कि क्या सोशल मीडिया जन आकांक्षाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व कर रहा है, कि नेता जमीन छोड़कर 'डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यूडॉटकॉम' के सागर में तैरते हुए फेसबुक और ट्विटर जैसी नावों से लोगों के बीच उपस्थिति दर्ज कराना चाहते हैं? इस स्थिति में सोशल मीडिया को किस दृष्टि से देखा जाए, यह अध्ययन का कम भ्रम का विषय ज्यादा लगता है।

इन अध्ययन रिपोर्टों में एक रिपोर्ट आइरिश नॉलेज फाउंडेशन और इंटरनेट मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा तैयार की गयी है, जिसके अनुसार सोशल मीडिया अगले लोकसभा चुनाव में 543

सीटों में से 160 सीटों पर अपना प्रभाव अवश्य दिखाएगी। इसका कारण यह बताया गया है कि इन सीटों पर कुल मतदाताओं की संख्या के 10 प्रतिशत से अधिक वहां फेसबुक यूजर्स हैं। खास बात यह है कि इस रिपोर्ट में 67 सीटों को सोशल मीडिया के मध्यम प्रभाव वाली श्रेणी में, 60 सीटों को न्यूनतम प्रभाव वाली तथा 256 सीटों को प्रभावमुक्त बताया गया है। जबकि दूसरी रिपोर्ट 'ग्लोबल एटिट्यूड' नाम से है, जिसे एक अमेरिकी फैक्ट टैंक 'नॉन पार्टिजन फैक्ट टैंक' और प्यू रिसर्च सेंटर द्वारा तैयार किया गया है। इस रिपोर्ट को 21 देशों में किए गए सर्वे के आधार पर तैयार किया गया है। इसमें स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि भारत में मात्र 6 प्रतिशत लोग ही सोशल मीडिया का प्रयोग करते हैं इसलिए भारत में इसका प्रभाव चुनाव पर उतना नहीं पड़ेगा,



जितना विकसित देशों में पड़ता है। इस रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट किया गया है कि भारत में अमरीका के 92 फीसद के मुकाबले मात्र 10-12 फीसद लोग ही इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। इस स्थिति में सोशल मीडिया 2014 के आम चुनाव में कितना प्रभाव छोड़ पाएगा, यह अभी स्पष्ट नहीं है। लेकिन फिर भी नेताओं की योजनाबद्ध प्रतियोगिता सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर चल रही है और वे इससे बहुत ज्यादा उम्मीदें भी पाल बैठे हैं। क्या ये नेता यह मानकर चल रहे हैं कि लगभग 10 करोड़ का सोशल मीडिया से जुड़ा एक आभासी परिवार, जो 'क्लिक एण्ड ओपन' के जरिए अपनी स्वच्छंदता का प्रदर्शन कर रहा है, वह लोकतंत्र में प्रभावी भूमिका निभाने वाला है अथवा निभा रहा है?

सामान्य तौर पर तो राजनीतिज्ञ, बुद्धिजीवी एवं मीडियाई सारथी यह स्वीकारने में कोई परहेज नहीं कर रहे हैं कि सोशल मीडिया से जुड़े आठ से दस करोड़ यूजर्स सोशल मीडिया पर केवल निजी

आज सोशल मीडिया को एक ताकत मानकर राजनीतिक दलों से लेकर सरकार के मंत्रियों तक में सोशल मीडिया टीम रखने का चलन जोर पकड़ रहा है। इसका उद्देश्य है सोशल मीडिया पर नजर रखना और साथ ही साथ अपनी लोकप्रियता के ग्राफ का अध्ययन करना।

बातचीत या मनोरंजन ही नहीं करते बल्कि इनमें से 45 प्रतिशत से अधिक यूजर्स सघन राजनीतिक विमर्श भी खुलकर करते हैं। इसलिए यह मान लिया जा रहा है कि आज सोशल मीडिया की अपनी एक हैसियत है। जाहिर है इस हैसियत का प्रयोग अपने लाभ के लिए करने के लिए जब अभिनेता और व्यवसायी सोशल साइट्स पर सक्रिय हो सकते हैं तो फिर राजनीतिज्ञों के लिए यह लाभदायक क्यों सिद्ध नहीं हो सकती। वास्तव में दो दशक पहले तक राजनीतिज्ञ को अपनी बात को कहने के लिए या तो सीधे जनता के बीच जाना होता था या फिर अपने सहयोगियों, अनुयायियों और मतदाताओं तक अपनी बात पहुंचाने के लिए अखबार, रेडियो व जनसभाओं का सहारा लेना पड़ता था। शहरी मतदाताओं के बीच जाने का एक माध्यम सिनेमाघर भी थे, जहां स्लाइड्स चलाई जाती थीं। इसके बाद टेलीविजन और वीडियो कैसेट्स या केबल टीवी वालों पर निर्भरता बढ़ी लेकिन अब उनकी निर्भरता दूसरों पर कम हो गयी और



सोशल मीडिया यानि ऑर्कुट, फेसबुक, ब्लॉग और ट्विटर के जरिए वे सीधे सभी के समक्ष उपस्थित हो सकते हैं। यही कारण है कि अब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ट्विटर से जुड़े हैं और उनका एकाउंट बकायदे प्रधानमंत्री कार्यालय चलाता है। भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी नियमित रूप से ब्लॉग लिखते हैं और भाजपा के ही सुषमा स्वराज, नरेंद्र मोदी, अरुण जेटली आदि तो सोशल नेटवर्किंग प्रयोग के मामले में एडिक्ट्स से लगते हैं।

गौर से देखें तो आज सोशल मीडिया को एक ताकत मानकर राजनीतिक दलों से लेकर सरकार के मंत्रियों तक को विशेष सोशल मीडिया टीम रखने का चलन जोर पकड़ रहा है। इसका उद्देश्य है सोशल मीडिया पर नजर रखना और साथ ही साथ अपनी लोकप्रियता के ग्राफ का अध्ययन करना। आज की राजनीति की सम्पूर्ण कवायद इसी के इर्द-गिर्द घूमती है। ऐसी सूचनाएं हैं कि ममता बनर्जी से लेकर नरेंद्र मोदी या फिर अन्य दलों के तमाम नेताओं तक मीडिया के ऑनलाइन और ऑफलाइन,

प्लेटफॉर्म पर नजर रखने के लिए मीडिया टीम की सेवा ले रहे हैं। कुछ नेताओं ने तो बाकायदे कुछ लोगों की टीम बना रखी हैं जो जनता के मूड और राजनीतिक हवा के दबाव जांचने का काम कर रही हैं। ये नेता इसलिए अधिक चौकन्ने लगते हैं क्योंकि इन्हें यह मालूम है कि परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया के बीच एक प्रमुख अंतर है। वह यह कि सोशल मीडिया पर आपको तत्काल प्रतिक्रिया मिलती है जबकि परम्परागत मीडिया की प्रतिक्रिया कुछ विलम्ब से और वह भी तोड़-मरोड़कर। दूसरी बात यह भी है कि सोशल मीडिया, मीडिया का एकमात्र ऐसा रूप है, जहां विभिन्न मुद्दों और नीतियों पर दोनों तरफ से सूचनाओं के आदान-प्रदान की संभावना होती है। यही कारण है कि अब अधिकांश पार्टियां और नेता करबद्ध निवेदन और जनगण के दरवाजे पर वोट मांगने के लिए जाने से बेहतर यह समझते हैं कि क्लिक, ओपन, हैस, टैग, शेयर, लाइक आदि के जरिए लोगों से जुड़ना ज्यादा लाभोपयोगी रहेगा। यानी सोशल मीडिया इनके लिए

2014 में एक स्वप्न सार्थक होने का बेहतर जरिया है। लेकिन क्या वास्तव में यह सपना सार्थक हो सकता है, खासकर तब जब भारत की लगभग 74 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती हो?

बहरहाल, 2014 का लोकसभा चुनाव सही मायने में देश का पहला सोशल मीडिया चुनाव है क्योंकि आज करीब 9 करोड़ फेसबुक यूजर्स हैं और करीब दो करोड़ ट्विटर यूजर्स हो चुके हैं, जो इन साइट्स पर अपनी बेबाक टिप्पणियां कर रहे हैं। इसका असर चुनावों पर हो सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो सोशल मीडिया साइट्स ऐसी साइट्स हैं जहां लोग अपनी बेबाक टिप्पणियां कर सकते हैं और यदि उनकी बात में दम है तो फिर उन्हें नजरअंदाज कर पाना मुश्किल भी है और घातक भी। लेकिन क्या वास्तव में सोशल मीडिया साइट्स पर जमे लोगों को सक्षम और समर्थ वोटर बिरादरी के रूप में देखा जाना उचित होगा? सोशल मीडिया की लोकप्रियता को जमीनी लोकप्रियता का पूरक मानना उचित होगा? स्पष्ट तौर पर नहीं। कारण यह है कि भारत का सम्पूर्ण ग्रामीण वर्ग और अधिकांश शहरी वर्ग इससे अभी तक कटा हुआ है जिस पर सोशल मीडिया की हलचल का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए सोशल मीडिया कम से कम इस वर्ग पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाएगा। तो क्या भारत में यह भी संभव हो सकता है कि सोशल मीडिया में अधिकाधिक सक्रियता रखने वाला नेता या दल आम जन पर कोई प्रभाव न छोड़ पाए। वैसे भारत में सोशल मीडिया पर चल रही बहसों में सार्थक प्रश्नों की कमी दिखती है, मानव गरिमा का धड़ल्ले से उल्लंघन हो रहा है, इसलिए सोशल मीडिया के जरिए प्रसारित होने वाले राजनीतिक संदेशों को भावी चुनाव में परिणामों के खांचे में रखकर देखना उचित नहीं लगता। सोशल मीडिया जितना अधिक आंदोलन और क्रांति में समर्थ हो सकता है, उतना शांतिपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन में नहीं। इस दृष्टि से सोशल मीडिया वास्तव में एक छोटा सा माध्यम है, जो अभी तक अधिकांश भारतीय युवाओं की मनोदशा के प्रकटीकरण का साधन अधिक बना हुआ है, सार्थक राजनीतिक-आर्थिक बहसों के लिए बहुत ही कम। इसलिए सोशल मीडिया आंशिक प्रभाव ही छोड़ पाएगा, आमूलचूल परिवर्तन लाने में इसकी भूमिका गौण या फिर न्यूनतम ही रहेगी।

(लेखक वरिष्ठ राजनीतिक विश्लेषक हैं।)